

लड़कियों की शिक्षा हमारे देश में चुनौती रही है। सभी लड़कियों की शिक्षा के लिए नीति के स्तर पर अनेक तरह की रणनीतियां अपनाई गईं। यह लेख शिक्षा के गम्भीर मुद्दों के सरलीकृत समाधानों में से एक का गहरे जाके विश्लेषण करता है और नए सिरे से सोचने की जरूरत की ओर इशारा करता है।

शिक्षक और गृहिणी-नीति का संघर्ष

लतिका गुप्ता

प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की कई परियोजनाओं में सक्रिय भूमिका निभाई है। लड़कियों की अस्मिता के संदर्भ में धर्म और लिंग भाव के संबंधों पर शोध किया है। एन.सी.ई. आर.टी. से प्रकाशित क्रमिक पुस्तकमाला 'बरखा' की समन्वयक रही हैं।

पिछले दो दशकों में बच्चों को स्कूल में भर्ती करने और उन्हें वहां टिकाए रखने की मुहिम चलाई गई। इसके लिए कई युक्तियां अपनाई गईं। एक युक्ति रही अधिक से अधिक संख्या में महिला अध्यापिकाओं की नियुक्ति। इसे एक युक्ति मानने के पीछे कई तरह के तर्क दिए जाते हैं, जैसे यह कि महिलाएं स्वभाव से ही नर्म होती हैं और वे बच्चों के साथ रहना पसंद करती हैं। यह तर्क महिलाओं की एक रूढ़िबद्ध छवि पर आधारित है जिसमें जीवनयापन का निर्धारित दायरा परिवार होता है। इस तर्क में यह बात निहित है कि स्कूल में अध्यापक बनी हुई महिला और घरेलू महिला में कोई खास फर्क नहीं होता। समाज में यह मान्यता भी व्याप्त है कि बच्चों का पढ़ाने का पेशा महिलाओं के लिए ठीक रहता है क्योंकि इसमें बस आधे दिन का काम होता है और बाकी बचे दिन में घरेलू जिम्मेदारियों का निर्वाह किया जा सकता है। आधे दिन काम करके परिवार की आमदनी भी बढ़ जाती है और महिला पारंपरिक गतिविधियों एवं काम के लिए उपलब्ध रहती है। अधिक संख्या में महिला अध्यापिकाओं की नियुक्ति करने के पीछे दो और तर्क दिए जाते हैं कि वे नई पीढ़ी की लड़कियों के लिए रोल-मॉडल का काम करेंगी और अध्यापिकाओं की मौजूदगी से माता-पिता अपनी बेटियों की सुरक्षा को लेकर आश्वस्त रहेंगे। इस तरह की मान्यताएं हमारे समाज और हमारी व्यवस्था में व्याप्त हैं। सतह से देखने पर ये मान्यताएं आश्वस्त करती हैं कि जैसे हम महिला अध्यापक नामक तलवार से कई शिकार करने में सफल हो रहे हैं। शायद इस मुद्दे पर नए सिरे से सोचने की जरूरत है।

मुझे दिल्ली विश्वविद्यालय के एक विशेष शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में पढ़ाने के दौरान महिला अध्यापकों की नियुक्ति की नीति पर सोचने का मौका मिला। यह कार्यक्रम सिर्फ लड़कियों के कॉलेजों में चलाया जाता है। कक्षा में जब पिछले दिन न आने का कारण पूछा जाता था तो खराब तबियत या रिश्तेदारों का आना आम कारणों की तरह सामने आते। अक्सर, विद्यार्थी मेरे द्वारा दी गई पाठ्यसामग्री को न पढ़ पाने के पीछे भी यही कारण देती थीं। साप्ताहिक व्रत भी छुट्टी लेने और न पढ़ पाने का कारण बनते थे। कमजोर शरीर और परंपरा की जिम्मेदारियों से बंधे जीवन में लड़कियों के पास ऐसी विद्यार्थी बनने का जज्बा और मौका बहुत सीमित था जिसके लिए अपना पेशेवर विकास सर्वोपरि हो। मैंने उन्हें कई बार गम्भीर रूप से ललकारा कि उनको अक्सर तबियत खराब रहने पर शर्म क्यों नहीं आती। मेरा यह तर्क उनको बेमानी लगता था कि उन सबने दसवीं तक विज्ञान पढ़ रखा था और उनको अपनी सेहत का ख्याल स्वयं रखना चाहिए। मेरे इस तरह के तर्कों का जवाब मेरी विद्यार्थी बस हल्के से मुस्कुराकर या सिर झुकाकर दे देती थीं। घरेलू काम की जिम्मेदारियों के लिए तो मैं कुछ खास कह भी नहीं सकती थी सिवाय, सैद्धांतिक विश्लेषण करवाने के।

विद्यार्थियों के लिए अक्सर बीमार रहना और व्रत इत्यादि के लिए कॉलेज न आ पाना कभी एक गंभीर मुद्दा नहीं बना, भले ही इनसे उनकी पढ़ाई में कितना ही असर क्यों न पड़ता हो। उनके रवैये में अपने पेशेवर विकास को लेकर एक तरह की उदासीनता झलकती थी। कभी-कभी मेरे तर्कों से उकताकर वे कहती थीं कि नौकरी लगे न लगे, यह सब तो करना ही है। कई विद्यार्थियों के परिवारों ने डिग्री के अंतिम वर्ष में शादी के प्रयास गहन कर भी दिए थे। एक शिक्षक के रूप में मैं अजीब-सी हताशा महसूस करती थी कि लड़कियां जीवन में कुछ भी करने से पहले स्त्रियोचित सांचे में ढल जाती हैं। इस ढांचे में शादी के अलावा बाकी सब बेमानी-सा लगता है। मैं अक्सर यह सोचती कि सांचे में इस कदर ढली ये लड़कियां बच्चों को स्वावलंबी निर्णय और खोज के लिए कैसे प्रेरित कर पाएंगी?

जब मेरी कुछ विद्यार्थियों ने डिग्री पूरी करके स्कूलों में नौकरी पाई और उनका व्यक्तिगत जीवन आगे बढ़ा तब मुझे महिला अध्यापकों की संख्या बढ़ाने की नीति के निहितार्थों को गहराई से समझने का मौका मिला। यहां संक्षेप में एक ऐसी अध्यापिका का अनुभव पेश है जिसको पढ़ाने के कौशल के नजरिए से श्रेष्ठ अध्यापिकाओं की श्रेणी में रखा जाना चाहिए। तारा को कॉलेज से निकलते ही एक महंगे निजी स्कूल में नौकरी मिल गई। वह निजी स्कूल दिल्ली के गिने-चुने स्कूलों में से था जिसने उच्च न्यायालय के आदेश को मानते हुए वर्ष 2005 में ही 25 प्रतिशत सीटें गरीब बच्चों के लिए आरक्षित कर दी थीं। स्कूल ने तारा का चयन करते समय यह सोचा कि उसका विशेष प्रशिक्षण गरीब बच्चों के समायोजन में काम आएगा। ऐसा हुआ भी।

तारा शुरू से ही पहली कक्षा के लिए बहुत अच्छी अध्यापक साबित हुई। न केवल गरीब बच्चों के समायोजन और उनकी पढ़ाई बल्कि कक्षा के अमीर बच्चों की पढ़ाई के लिए भी उसकी तारीफ होने लगी। चार महीने के अंदर तारा की कक्षा का हर बच्चा पढ़ना-लिखना शुरू कर चुका था। बच्चों को करीब बीस कविताएं और कुछ कहानियां भी याद हो गई थीं। स्कूल ने तारा को पहली कक्षा की पढ़ाई के नियोजन का जिम्मा भी दे दिया, जिससे बाकी खण्डों के अध्यापकों को भी फायदा हो। तारा की सगाई उसके पसंद के लड़के से हो चुकी थी लेकिन शादी रुकी हुई थी क्योंकि उसके होने वाले ससुर की मांग थी कि लड़की सरकारी नौकरी में हो। तारा ने केंद्रीय विद्यालय का फार्म भरा हुआ था। निजी स्कूल में पढ़ाते हुए सात महीने ही हुए थे कि केंद्रीय विद्यालय संगठन में नंबर आ गया और तारा को सरकारी नौकरी मिल गई। वह इस स्कूल के बच्चों को बीच में छोड़ना नहीं चाहती थी लेकिन उसके परिवार को उसकी शादी करने की जल्दी थी। ससुर को यह बात मंजूर नहीं थी कि तारा शादी के बाद नौकरी बदल

लेगी। शादी की जल्दी में तारा ने बिना नोटिस दिए नौकरी छोड़ दी और सरकारी नौकरी में पहुंच गई। उसने दो महीने की तनखाह का नुकसान उठाया।

केंद्रीय विद्यालय संगठन ने तारा को अलीगढ़ के स्कूल में नियुक्ति दी। अब तारा के ससुर इस बात पर नाराज रहने लगे कि शादी के अगले हफ्ते ही बहू घर से दूर चली गई। शादी के कारण उसकी वेशभूषा में बहुत बदलाव आ गया था। वह रोजमर्रा में काफी श्रृंगार करने लगी थी और बहुत सारे गहने पहनने लगी थी। नाक की नथनी और भारी मंगलसूत्र ने उसे एक अलग व्यक्तित्व दे दिया था जो उसके अपने व्यक्तित्व से काफी अलग था। अलीगढ़ के स्कूल में तारा सजी-धजी पढ़ाने जाती। तारा को दूसरी कक्षा पढ़ाने को मिली थी। उसने अपने कौशलों का इस्तेमाल करते हुए पढ़ाना शुरू किया और विद्यार्थी उसके पढ़ाने के तरीके में ढल गए। वह उन्हें पास के खेतों में ले जाती, चिड़िया और जानवर पर कविता गवाती, कहानी सुनाती और नए-नए तरीकों से पढ़ना-लिखना सिखाती। रोज शाम को उसके ससुराल से फोन आता और उसे ताने दिए जाते कि दिल्ली में उसका पति अकेला था। उसके लिए खाना बनाने वाला कोई नहीं था। फोन की तल्लखी बढ़ने लगी और तारा की झल्लाहट बच्चों पर निकलने लगी। वह बात-बात पर बच्चों पर बिगड़ती और कहानी भी उतना मन लगाकर न सुन पाती। तारा हर शनिवार को बस से दिल्ली जाती और इतवार की रात यात्रा करके लौटती ताकि सोमवार को सुबह स्कूल पहुंच सके। सोमवार को तो वह बिलकुल ही पढ़ाने की हालत में नहीं होती थी। दिल्ली के घर में सप्ताह भर की सफाई का काम एक दिन में निपटाती और दो दिन में दो यात्राएं कर के वह बहुत थक जाती थी। विद्यार्थी भी पहचानने लगे थे कि तारा मैडम सोमवार को बहुत डांटती हैं और पढ़ाती भी नहीं हैं। तारा बुधवार को पढ़ाने के मूड में आ पाती और शुक्रवार से उसे घर जाने की चिंता सताने लगती। इस बीच वह गर्भवती हो गई और तारा के ससुराल वालों ने इसको कारण बनाते हुए उसकी बदली दिल्ली करवा ली। दिल्ली के केंद्रीय विद्यालय में चार महीने पढ़ाने के बाद वह प्रसव अवकाश पर चली गई।

हम तारा की कहानी की मदद से शिक्षा के परिदृश्य में महिलाओं की बढ़ती संख्या के निहितार्थों पर विचार कर सकते हैं। तारा की कहानी एक आम कहानी है, इसलिए वह व्यापक विमर्श का आधार बन सकती है। तारा के प्रशिक्षण में जिस बात पर सबसे ज्यादा जोर दिया गया था, वह था कि अध्यापक स्वावलंबी रूप से निर्णय ले कि अपने विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए कौन-सा तरीका उपयुक्त रहेगा। इसके लिए जरूरी मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांतों से भी परिचित करवाया गया। तारा ने यह बात भी समझी कि बच्चे अध्यापक के साथ एक रिश्ता बनाते हैं जिसके तहत वे बहुत कुछ स्वतः ही सीख लेते हैं। तीनों स्कूलों के बच्चों का तारा से एक रिश्ता बना जिसमें उसके आधुनिक शिक्षण के तरीकों ने भूमिका निभाई। तीनों समूहों के बच्चों को तारा ऐसे कारणों से छोड़कर गई जो किसी और की इच्छा जताते थे। उसकी अपनी नहीं। शादी की जल्दबाजी और शादी के बाद ससुराल द्वारा नियंत्रित जीवन जीना आम भारतीय महिला की सच्चाई है। इससे अध्यापक बनी महिलाएं भी परे नहीं हैं। जल्द से जल्द शादी, शादी के सूचक गहने हमेशा लादना, सारे कर्मकाण्ड निभाना, व्रत-त्यौहार करना और ससुराल वालों के हिसाब से जिंदगी जीना महिला अध्यापकों के जीवन का भी अटूट हिस्सा हैं। वे स्कूल में करवा चौथ और अहोई अष्टमी का व्रत रखकर आती हैं जो पति एवं बेटे की लंबी आयु के लिए रखे जाते हैं। तारा भी यह सब करती थी। एक दिन वह स्कूल में चक्कर आने से बेहोश हो गई क्योंकि सूर्य ग्रहण लगा होने के कारण पति ने सुबह से कुछ खाने को मना किया था।

जीवन चक्र के आम परिवर्तनों से महिला अध्यापकों की क्षमताओं में भी बदलाव आते हैं, जैसे तारा के जीवन में शादी के कुछ ही महीनों में आ गए। ससुराल द्वारा पैदा किए गए तनाव की झल्लाहट वह बच्चों पर निकालने लगी। शादी के साथ आई जिम्मेदारियों के बोझ ने उसके अंदर मौजूद अच्छे अध्यापक को

जैसे जकड़-सा लिया। बढ़ते अनुभव के साथ एक पेशेवर व्यक्ति में परिपक्वता आती है लेकिन महिलाओं में परंपरा के बोझ को ढोने की थकान भी आती है जो उनकी पहले से कमजोर आत्म-छवि को और ज्यादा खंडित करती है। आधे दिन के काम वाली छवि से अध्यापकों का पेशा हमेशा से ही ग्रस्त रहा है। पेशेवर अस्मिता और प्रतिबद्धता में दो कारक निहित होते हैं। पहला, अपने को बेहतर बनाने के लिए ज्यादा से ज्यादा समय लगा पाना और दूसरा, पूरा ध्यान अपने काम में लगा पाना। महिला अध्यापकों के लिए यह दोनों ही दुर्लभ होते हैं क्योंकि उनके जीवन की मुख्य धुरी घरेलू काम होती है। उन्हें नौकरी के लिए जरूरी घंटे बिताकर घर पहुंचने की जल्दी होती है। हमारा समाज उनकी प्रतिबद्धता की चिंता घर के संदर्भ में ज्यादा सख्ती से नापता है। पेशे के प्रति महिलाओं की गंभीरता अभी हमारे समाज के गले ही नहीं उतरी है। महिलाओं के जीवन की सफलता अभी भी दो ही कसौटियों पर आंकी जाती है और वे हैं : विवाह एवं मातृत्व। यही दो कसौटियां महिला अध्यापकों के लिए भी इस्तेमाल होती हैं, भले ही वे पेशेवर हैं और उनके ऊपर विद्यार्थियों को प्रेरित करने की उतनी ही जिम्मेदारी होती है जितनी पुरुष अध्यापकों पर।

महिला अध्यापकों को अधिक संख्या में नियुक्त करके लड़कियों के लिए रोल-मॉडल उपलब्ध कराने की नजर से देखें तो तारा निश्चय ही परंपरा का रोल-मॉडल बनी जिसके तहत पढ़ी-लिखी महिलाओं को भी खुद निर्णय लेने की आजादी नहीं है। तारा के कम उम्र के विद्यार्थियों को यह बात पुष्ट हो गई होगी कि शादी और प्रजनन ही महिला के जीवन का सर्वोपरि उद्देश्य है, बाकी सब गौण हो जाता है। ऐसे में लड़कियों के सामने स्वावलंबन के रोल-मॉडल और लड़कों के सामने वैकल्पिक जीवन के उदाहरण रख पाना असंभव-सा प्रतीत होता है। परंपरागत रूप से जीवन के कुछ अनुभव पुरुषों के लिए सीमित हो गए हैं, जैसे कि खेलों में प्रवीणता हासिल करना और गणित एवं विज्ञान की पढ़ाई खासकर इंजीनियरिंग की। खेलों के साथ उन्मुक्तता का अनुभव, शारीरिक काम की ताकत और स्वच्छंद जीवन के मौके मिलते हैं। गणित और विज्ञान के क्षेत्रों में माना जाता है कि लड़कियां ज्यादा आगे नहीं बढ़ सकतीं इसलिए शिक्षक प्रशिक्षण के स्तर पर भी महिलाएं इन विषयों में न के बराबर ही हैं। ऐसे में नई पीढ़ी की लड़कियों को गणित और विज्ञान पढ़ने की तरफ प्रेरित करने के बारे में तो इस युक्ति में कोई विचार किया नहीं गया, जिसके तहत महिला अध्यापक नियुक्त करके हम आश्वस्त महसूस कर लेते हैं कि लड़कियों की शिक्षा के सारे प्रबंध हो गए। सामाजिक ढांचे में जड़ हो गई भूमिकाओं को तोड़ने के लिए जरूरी है कि वर्तमान में बड़ी हो रही लड़कियों को सिर्फ महिला अध्यापकों तक सीमित न रखा जाए। जीवन के हर क्षेत्र के अनुभव उन्हें मिलें और रोल-मॉडलों में भी विस्तार हो।

अगर हम ऐसा सोचते हैं कि महिला अध्यापकों की मौजूदगी से लड़कियों की सुरक्षा का इंतजाम हो जाता है तो यह सोचने का विषय है कि इस विचार से शिक्षा व्यवस्था के चरित्र पर कैसी रौशनी पड़ती है। महिला अध्यापकों को विद्यार्थियों की सुरक्षा की जिम्मेदारी सौंपकर हम पुरुष अध्यापकों के बारे में एक बहुत बड़ी टिप्पणी कर रहे होते हैं कि स्वयं अध्यापक ही असुरक्षा का स्रोत है। यह मुद्दा इतना हल्का है नहीं, जितना इसके सतही समाधान से प्रतीत होता है। अगर महिलाओं की मौजूदगी से लड़कियों की सुरक्षा तय होती है तो दुनिया की हर संस्था सारे इंतजाम छोड़कर यही युक्ति अपना ले। इस लेख में प्रस्तुत तर्कों को महिला अध्यापकों की नियुक्ति का विरोधी समझना नादानी होगी। इन तर्कों का तात्पर्य यह है कि केवल महिला अध्यापकों की नियुक्ति से हम उन गहरी समस्याओं का समाधान नहीं कर सकते जिनके कारण लड़कियों की शिक्षा एक चुनौती बन गई है। ♦